THE TIMES OF INDIA

Date: 21-03-18

Parliament paralysis

Political flashpoints must necessarily find voice in legislatures, but without disrupting them

TOI Editorials

The washout of Parliament's budget session is dispiriting and evokes a sense of déjà vu. The 16th Lok Sabha has largely recorded high productivity while Rajya Sabha witnessed greater disruption due to the Congress-led opposition's greater strength there. Even in last year's much delayed and ultimately truncated winter session, Lok Sabha and Rajya Sabha recorded 91% and 56% productivity respectively. Shockingly, the comparative figure for the ongoing session is below 10% for either house. But similarities with UPA-2's final year in power are hard to ignore.

Virtually the entire contingent from Andhra Pradesh comprising TDP and YSRCP MPs are now agitating loudly over the denial of special status. In 2013-14, it was again Andhra MPs, mostly from Congress, who loudly protested in Parliament against the creation of Telangana. The latest disruptions – surprising because parties like TDP, YSRCP, AIADMK and TRS hardly joined any opposition cause until a month ago – are also a reminder that election season is beckoning. Ever since the then Opposition pinned down UPA-2 and stalled Parliament on CAG reports into 2G/ Coalgate/ CWG "scams" and demanded a JPC on 2G, disruption has replaced debate as Parliament's primary oppositional gambit.

The NDA government took advantage of all the din and uproar by passing the Finance Bill and Appropriations Bill without any discussion. Being the ongoing session's main agenda, its hasty passage before the session ends on April 6 was uncalled for. So far Congress had ploughed a lonely furrow leading the shouting brigade, often without support from others. Now the cacophony is complete with Andhra's discontent, Congress alleging government collusion in Nirav Modi's exit, TRS demanding removal of 50% cap on reservations, and AIADMK/ DMK raising the Cauvery issue. As elections near the BJP-Congress, TDP-YSRCP, TRS-Congress and AIADMK-DMK rivalries are in full play. But squandering parliamentary time to gain political brownie points has no winners, only losers.BJP is currently sitting pretty after enacting keystone legislations like Aadhaar Act, GST Act, and Bankruptcy Code comparatively early. The business on the table for the last winter session and current budget session indicate the government has no pressing legislative agenda. While this may explain its lackadaisical attitude, the sense of drift that percolates down to society from a chaotic Parliament is bad for opposition and worse for government.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 21-03-18

WTO: India must shed the deal-breaker image

ET Editorials

Trade is vital for India's growth and we need to be flexible, tactful and shed our deal-breaker image at WTO negotiations, at the informal ministerial in New Delhi and well beyond. India needs to be open to discussions on new issues like e-commerce or investment facilitation, even as a permanent solution to public stocking in agriculture eludes consensus. A forward-looking approach is what we need.We do need to push for greater multilateralism in world trade and call for strengthening the WTO dispute settlement mechanism. On public stockholding of grain, it would make sense to better leverage private stocking capacity and not rely entirely on a not very efficient public sector monopoly. India's food subsidy conflates producer support with consumer subsidy for the poor. These can be segregated. Of course, it would mean restructuring the food security arrangement we have. Costly and inefficient as it is, it is ripe for reform in any case. It would also make sense to revisit the 1986-88 reference price when it comes to public stocking. Further, we need to take into account our competitive advantage and call for increased openness to trade in services. For instance, there seems much potential to seek greater trade access under the General Agreement on Trade in Services (GATS) classification Mode 3, commercial presence, which pertains to services by a provider in one country in the territory of another.Hence the need to mull over new issues like investment facilitation or even e-commerce, which has the potential to hugely boost much-needed investment in logistics and supply here. A flexible, forward-looking approach to trade negotiations would pay rich long-term dividends. India needs a functional multilateral system more than the US does, for instance.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 21-03-18

तनातनी कहें या ग्लासनोस्त? सरकारी पहल से होगा तय

ए के भट्टाचार्य

बैंकिंग नियमन को स्वामित्व के लिहाज से **तटस्थ** बनाए जाने की जरूरत पर बल देने वाले भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर ऊर्जित पटेल के बयान को रिजर्व बैंक और केंद्रीय वित्त **मंत्रालय** के बीच तनातनी मानना इसका सरलीकरण ही कहा जाएगा। पटेल ने पिछले हफ्ते जो कुछ कहा है उसकी अहमियत तनातनी से कहीं अधिक है। यह सच है कि पटेल का यह बयान **केंद्रीय** वित्त मंत्री अरुण जेटली

के उस बयान के बाद आया है जिसमें जेटली ने बैंक नियामक को ही पंजाब नैशनल बैंक (पीएनबी) में हुए 129 अरब रुपये के गारंटी पत्र (एलओयू) घोटाले के लिए जिम्मेदार ठहराया था। जेटली ने यह भी कहा था कि रिजर्व बैंक को बैंकों की समुचित निगरानी के लिए एक तीसरी आंख रखने की जरूरत है।दोनों पक्षों से आए बयानों के बावजूद इसे तनातनी मानना ठीक नहीं होगा। इसके बजाय यह मोदी सरकार के तहत वित्तीय क्षेत्र में घटित हो रहे एक तरह के ग्लासनोस्त (सुधार) का परिचायक है। आम तौर पर तनातनी का नतीजा गतिरोध के रूप में सामने आता है जिसमें अमूमन राजनीतिक नेतृत्व ही विजेता बनकर उभरता है। लेकिन ग्लासनोस्त प्रक्रिया में नतीजा अलग होता है और सुधारों का एजेंडा रफ्तार पकड़ सकता है। आने वाले महीनों में वित्त मंत्रालय और आरबीआई में होने वाले बदलावों की प्रकृति ही यह बताएगी कि यह महज तनातनी है या फिर ग्लासनोस्त।

फिलहाल यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि यह कोई तनातनी नहीं है। भारत में केंद्रीय बैंक के गवर्नर शायद ही कोई ऐसा सार्वजनिक बयान देते हैं जो उन्हें सरकार या वित्त मंत्री के सामने खड़ा कर दे। आखिरकार रिजर्व बैंक गवर्नर की नियुक्ति केंद्र सरकार ही करती है और उसकी स्वायत्तता या स्वतंत्र हैसियत काफी हद तक इस बात से तय होती है कि वह सरकार की इच्छा होने तक ही अपने पद पर बना रह सकता है। अगर रिजर्व बैंक गवर्नर की सोच सरकार से अलग है तो वह आम तौर पर उसे सार्वजनिक नहीं करता है और अपने मतभेदों के बारे में वित्त मंत्री या प्रधानमंत्री से मिलकर निजी तौर पर चर्चा करता है।लिहाजा यह मुमकिन है कि रिजर्व बैंक गवर्नर का गांधीनगर में दिया गया यह भाषण सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के नियमन से संबंधित सुधारों को आगे बढ़ाने की कोशिश है। वित्त मंत्री का बैंक नियामक की भूमिका के बारे में स्पष्टवादी आकलन और रिजर्व बैंक गवर्नर का बैंक नियमन को स्वामित्व-तटस्थ बनाने के लिए जरूरी बदलाव करने की अहमियत पर बल देना असल में बैंक सुधारों पर अधिक चर्चा का माहौल बनाने की कवायद हो सकती है। इसके पीछे यह सोच होगी कि बैंकों के स्वामित्व में बदलाव की पहल का राजनीतिक प्रतिरोध पूरी तरह नगण्य नहीं तो कम हो सकता है।फरवरी के मध्य में पीएनबी का एलओयू घोटाला उजागर होने के तत्काल बाद नियामक के सुशासन सुनिश्चित करने और विवेकपूर्ण कारोबारी तरीके अपनाने में नाकाम रहने की बातें कही जाने लगी थीं। लेकिन जल्द ही यह चर्चा सार्वजनिक बैंकों का स्वामित्व ढांचा बदलने की जरूरत पर केंद्रित हो गई। भारत में बैंकिंग प्रणाली का करीब 70 फीसदी हिस्सा सार्वजनिक बैंकों के ही पास है। वित्त मंत्री ने अपनी शुरुआती टिप्पणियों में सार्वजनिक बैंकों के निजीकरण की संभावना से इनकार नहीं किया था लेकिन यह भी कहा था कि अभी सियासी माहौल स्वामित्व ढांचे में ऐसे बदलाव के अनुकूल नहीं है।

तमाम विशेषज्ञ एवं बैंकर बैंकों के निजीकरण से जुड़े अच्छे-बुरे पहलुओं पर चर्चा करते रहे लेकिन रिजर्व बैंक गवर्नर ने इस पर कुछ नहीं कहा था। इस तरह बैंक स्वामित्व पर पिछले हफ्ते आया बयान इस बारे में उनकी पहली प्रतिक्रिया है। उन्होंने निजीकरण पर बात नहीं की। वह बैंकों को कारोबारी नियमों के मुताबिक चलाने की प्रतिबद्धता जताने के साथ ही एक कदम आगे भी बढ़ गए और बैंक नियमन को स्वामित्व से तटस्थ करने के लिए कानूनी सुधार करने की वकालत की। आखिर इस बयान का मतलब क्या है?गवर्नर ने बैंकिंग नियमन अधिनियम में संशोधनों का जिक्र करते हुए कहा कि सार्वजनिक बैंकों का नियमन सात बिंदुओं में अन्य बैंकों के नियमन से अलग होता है। रिजर्व बैंक सार्वजनिक बैंकों के बोर्ड के फैसलों को पलट नहीं सकता है। रिजर्व बैंक सार्वजनिक बैंकों के चेयरमैन और प्रबंध निदेशकों को न तो हटा सकता है और न ही इन बैंकों के विलय पर फैसला कर सकता है। बैंकिंग गतिविधियों के लिए रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेने की जरूरत नहीं होने से सार्वजनिक बैंकों के लाइसेंस को निरस्त भी नहीं कर सकता है। रिजर्व बैंक सार्वजनिक बैंकों में तरलता बढ़ाने का भी फैसला नहीं कर सकता है।

ऐसे में रिजर्व बैंक के गवर्नर किस तरह के बदलाव के पक्ष में हैं? निजी बैंकों की तुलना में सार्वजनिक बैंकों की बाजार अनुशासन प्रणाली को कमजोर बताते हुए पटेल ने बैंकिंग नियमन अधिनियम में समुचित परिवर्तन करने का सुझाव दिया है। इस तरह सार्वजनिक बैंकों के नियमन में भी इन सात बिंदुओं में बदलाव कर रिजर्व बैंक को निजी बैंकों के नियमन जैसी शक्तियां दे दी जाएं। गवर्नर ने बैंकिंग नियमन अधिनियम में बदलाव को 'सभी विकल्पों में सबसे सुगम' बताया है।सार्वजनिक बैंकों का निजीकरण करना

बेहद महत्त्वाकांक्षी कदम हो सकता है और अगले आम चुनाव में 14 महीने का समय बाकी रह जाने से ऐसा करना मोदी सरकार के लिए राजनीतिक तौर पर भी जोखिम वाला काम हो सकता है। गवर्नर ने सार्वजनिक बैंकों के नियमन में सुधार के लिए ऐसी जमीन तैयार की है जो राजनीतिक रूप से कम जोखिम वाली और लागू करने में भी अपेक्षाकृत सरल है। यह तभी पता चल पाएगा जब आने वाले महीनों में सरकार इस दिशा में अपने कदम आगे बढ़ाती है। उस समय तक सरकार और रिजर्व बैंक के बीच तनातनी की अटकलों पर लगाम लगाई जा सकती है।

Date: 21-03-18

शुरुआत का वक्त

संपादकीय

सरकारी बैंक लगातार देश के नीति निर्माताओं के लिए समस्या का सबब बने हुए हैं। उनकी धीमी ऋण वृद्घि जहां निजी क्षेत्र के निवेश में सुधार की गति को धीमा कर रही है, वहीं हाल में सामने आए आभूषण कारोबारी नीरव मोदी को लेटर ऑफ अंडरटेकिंग (एलओयू) जारी करने संबंधी घोटाले ने इन बैंकों के संचालन से जुड़ी समस्या को एक बार फिर उजागर किया है। गौरतलब है कि निजी निवेश में सुधार देश की आर्थिक वृद्घि में सुधार से सीधे तौर पर संबंधित है। देश के बैंकिंग जगत के इतने बड़े हिस्से के सरकार के नियंत्रण में बने रहने देने के पक्ष में अब कोई व्यावहारिक या सैद्घांतिक दलील नहीं दी जा सकती है। तमाम उपाय किए जाने के बावजूद इन बैंकों के कामकाज में कतई सुधार नहीं हुआ है। इन बैंकों में ऋण को लेकर धोखाधड़ी या खराब निर्णय करने का सिलसिला जारी है। बैंकिंग व्यवस्था में सुधार के लिए ताजातरीन उपाय बैंक बोर्ड ब्यूरो के रूप में अपनाया गया लेकिन इस संकट की घड़ी में वह कमोबेश अनुपस्थित नजर आ रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि सरकार ने संभवत: उसे गंभीरता से लेना ही बंद कर दिया है। अब यह कमोबेश स्पष्ट हो चुका है कि सरकारी बैंकों का निजीकरण ही एकमात्र उचित उपाय है।

हालांकि बैंकों के निजीकरण की राह में कई बाधाएं हैं। मिसाल के तौर पर किसी भी सरकार के लिए इसके साथ ढेर सारा राजनीतिक जोखिम जुड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त बैंक खुद भी निजी क्षेत्र के लिए अधिग्रहण की दृष्टि: से कोई आकर्षक लक्ष्य नहीं हैं। उनमें से कई फंसे हुए कर्ज की समस्या से जूझ रहे हैं। इससे उनका मूल्यांकन कमजोर होता है। सरकार स्वाभाविक तौर पर इनकी अच्छी कीमत नहीं पाएगी और राजनीतिक मोर्चे पर विपक्ष सरकार पर हमला करेगा। कुछ बैंकों की तो मामूली कीमत भी मिल जाए तो गनीमत होगी। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि कई बैंकों में कर्मचारियों की संख्या जरूरत से ज्यादा है या फिर कर्मचारी अयोग्य हैं। अधिग्रहण करने वालों के लिए इन अतिरिक्त कर्मचारियों की छंटनी करना आसान नहीं होगा। बैंक यूनियन ताकतवर हैं और उनका विरोध जारी है। उनका राजनीतिक प्रभाव भी है। अगर बड़े पैमाने पर निजीकरण किया गया तो हमें कम मूल्यांकन देखने को मिलेगा, खरीदारों की संख्या कम होगी और बैंक कर्मचारी संगठन तथा विपक्षी दल इसका विरोध करेंगे। यही वजह है कि हाल के दिनों में करदाताओं की मदद से सरकारी बैंकों को उबारने के कई प्रयास अवश्य हुए हैं लेकिन निजीकरण की दिशा में कोई पहल देखने को नहीं मिली है।हालांकि इस गतिरोध को तोडऩे का एक तरीका है। सरकार अपने सबसे कमजोर बैंकों में से एक को निजीकरण के प्रयोग के लिए चुन सकती है। हकीकत में इसे एक ऐसे सरकारी बैंक के निजीकरण के रूप में सामने रखा जा सकता है जो बेहतर प्रदर्शन करने में नाकाम रहा। चूंकि यह एक विशिष्ट मामला होगा इसलिए राजनीतिक विरोध को भी खामोश किया जा सकता है। अगर यह बैंक बेहतर प्रदर्शन करता है तो इस सकारात्मक उदाहरण की मदद से भविष्य में निजीकरण की राह आसान की जा सकती है। संभावित अधिग्रहणकर्ता सरकारी बैंकों के अधिग्रहण के लिए सामने आ सकते हैं और उनकी बेहतर कीमत मिल सकती है। हर नया निजीकृत

होता बैंक इस दलील को मजबूत बनाएगा। इससे विरोध कम होगा और मांग बढ़ेगी। किसी छोटे और कमजोर प्रदर्शन वाले सरकारी बैंक के निजीकरण के साथ इसकी शुरुआत की जा सकती है। सरकार को इस काम में अब और अधिक देरी नहीं करनी चाहिए। चरणबद्घ रूप में ही सही लेकिन इस प्रक्रिया की शुरुआत अब हो जानी चाहिए।

Date: 21-03-18

समस्या का सबब बनरहा है इंटरनेट?

अजित बालकृष्णन

दुनिया भर में डिजिटल साम्राज्यवाद के खिलाफ तमाम आवाज उठ रही हैं। इससे निकलने की क्या राह हो सकती है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं अजित बालकृष्णन

पिछले दिनों जब मैंने सम्मानित और प्रतिष्ठित ब्रिटिश समाचार पत्र द टेलीग्राफ में यह खबर पढ़ी कि जर्मन चांसलर एंगेला मर्केल और फ्रांस के राष्ट्रपति एमेनुएल मैक्रां डिजिटल साम्राज्यवाद के खिलाफ चेतावनी जारी कर रहे हैं तो मुझे सहसा यकीन नहीं हुआ। यह खबर कुछ सप्ताह पहले दावोस में आयोजित विश्व आर्थिक मंच से आई थी। वहां दोनों नेताओं ने यूरोप के शेष देशों को यह चेतावनी दी थी कि वे डिजिटल साम्राज्यवाद के खिलाफ संयुक्त बचाव की तैयारी करें। चेतावनी यह थी कि अमेरिकी कारोबारी दिग्गजों और चीन के बीच सूचना क्रांति को लेकर जो जंग छिड़ी थी उसमें यूरोपीय संघ के हित कहीं बहुत पीछे छूट सकते थे?इस खबर को पढऩे के बाद मुझे अपने आप को यह यकीन दिलाने में काफी वक्त लगा कि यह सपना या मेरे मन की कल्पना नहीं बल्कि हकीकत थी। फ्रांस जो कुछ अरसा पहले तक दुनिया के सबसे बड़े उपनिवेशवादी देशों में से एक था, वह दूसरों को नई तरह के उपनिवेशवाद के खिलाफ चेतावनी दे रहा था। वहीं जर्मनी, जिसने 20वीं सदी का शुरुआती हिस्सा दो विश्वयुद्घों में बिताया वह दुनिया को साम्राज्यवाद के खिलाफ चेतावनी दे रहा था?

यह बयान उस वक्त सामने आया है जब यूरोपीय आयोग ने गूगल पर 2.7 अरब डॉलर का जुर्माना लगाया है। यह जुर्माना गूगल शॉपिंग सर्च के दौरान किए गए मानक उल्लंघन से संबंधित है। यूरोपीय संघ के अनुसार गूगल ने निहायत व्यवस्थित ढंग से अपनी तुलनात्मक शॉपिंग सेवा को प्रमुखता प्रदान की जबकि प्रतिद्वंद्वी शॉपिंग सेवाओं को उसने अपने खोज परिणामों में सही ढंग से नहीं दिखाया है। इसके चलते प्रतिद्वंद्वी तुलनात्मक शॉपिंग सेवाएं औसतन गूगल के खोज नतीजों में चौथे पन्ने पर नजर आतीं।अन्य कंपनियां तो और भी नीचे नजर आती हैं। इस बीच एक अन्य चौंकाने वाली घटना सामने आई है। इंटरनेट को पैदा करने और दुनिया भर में उसे प्रसारित करने वाले देश अमेरिका में कम से कम आधा मुल्क इस बात पर यकीन करता है कि पिछले राष्ट्रपति चुनाव जिसमें डॉनल्ड ट्रंप जीते, उसमें रूस ने इंटरनेट की मदद से प्रभावशाली हस्तक्षेप किया। यह हस्तक्षेप डॉनल्ड ट्रंप के पक्ष में किया गया था, वरना हिलेरी क्लिंटन आज अमेरिकी राष्ट्रपति होतीं। उधर एक बुरी खबर यह भी है कि श्रीलंका में बौद्घ और मुस्लिम एक दूसरे के खिलाफ जंग छेड़े हुए हैं। देश में चरमपंथी इक्षहसा को काबू करने के लिए सरकारी अधिकारियों ने कुछ सोशल नेटवर्क वेबसाइटों को बंद करने के आदेश दिए हैं। इस आदेश से फेसबुक, इंस्टाग्राम, वाइबर और व्हाट्सऐप जैसी सोशल साइटें खासतौर पर प्रभावित हुई हैं। यह जानकारी देने वाली वेबसाइट एंगैजेट का यह भी कहना है कि अतीत में तुर्की ने भी यही काम किया था। उसने भी ट्वीट्स पर सेंसरशिप लागू की थी और सोशल मीडिया को समाज के लिए खराब बताते हुए इसकी जमकर आलोचना की थी। पिछले साल के अंत में कॉन्गो ने भी विरोध प्रदर्शन पर रोक लगाने के लिए इंटरनेट और एसएमएस की सेवाओं पर रोक लगाई थी। उस घटना के

बमुश्किल एक दिन बाद ही ईरान के अधिकारियों ने इंस्टाग्राम और टेलीग्राम जैसी सोशल मीडिया सेवाओं पर रोक लगा दी थी। मैं आंखे मल-मल कर इन बातों का तात्पर्य समझने का प्रयास कर रहा था। क्या इन जगहों पर वाक स्वतंत्रता को दबाया जा रहा था जैसा कि एंगैजेट की ओर से अटकल लगाई जा रही थी, या फिर यह दुनिया के अलग-अलग देशों में यह विरोध प्रदर्शन समाज का अत्यधिक पश्चिमीकृत छोटा सा तबका कर रहा था। या फिर क्या संचार के कुछ चैनलों की मौजूदगी के चलते समाज के कुछ तबकों का विरोध प्रदर्शन बाकी की तुलना में कहीं अधिक मुखर और तेज हो जाता है।

भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग भी भारत मैट्रीमोनी द्वारा लगातार एक दशक से किए जा रहे प्रयासों के बाद जागा और उसने कहा कि गूगल ने अपनी रसूखदार स्थिति का दुरुपयोग किया और उसने गूगल पर जुर्माना लगाया। यह जुर्माना वर्ष 2015 तक के तीन वर्ष तक गूगल के औसत भारतीय राजस्व का 5 फीसदी तय किया गया। यह राशि करीब 1.35 अरब रुपये ठहरती है। यह राशि 60 दिन के भीतर जमा करनी है। प्रतिस्पर्धा आयोग ने कहा कि कंपनी को खोज के मामले में पूर्वग्रह से ग्रस्त होकर काम करते पाया गया और ऐसा करके वह अपने प्रतिस्पर्धियों और उपयोगकर्ताओं दोनों को ही नुकसान पहुंचाने का काम कर रही थी। टिम बर्नर्स ली जिन्होंने वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू) का आविष्कार किया उन्होंने इन तमाम गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए गत सप्ताह ब्रिटेन के समाचार पत्र द गार्जियन में लिखा, 'वेब का इस्तेमाल हथियार के रूप में किया जा सकता है और इस पर रोक लगाने के लिए हम बड़ी प्रौद्योगिकी कंपनियों पर निर्भर नहीं रह सकते। चुनिंदा कंपनियों का विचारों के साझा होने की प्रक्रिया पर नियंत्रण करना बहुत खतरनाक है। ऐसे में एक नियामक की जरूरत पड़ सकती है। ये दबदबे वाले मंच प्रतिस्पर्धियों के लिए मुश्किल खड़ी करके अपनी स्थिति को मजबूत बनाने में सक्षम हैं। वे स्टार्टअप के रूप में चुनौती देने वाले उपक्रमों को खरीद लेते हैं, नवाचारों पर वे नियंत्रण कर लेते हैं और उद्योग जगत की शीर्ष प्रतिभाओं को भी वे अपने यहां नियुक्त कर लेते हैं। अगर इसमें उनके यूजर डेटा के कारण उनको मिलने वाली बढ़त को शामिल कर दिया जाए तो यही आशा करनी चाहिए कि आने वाले 20 साल पिछले 20 सालों की तुलना में कम नवाचार वाले होंगे।'वह कहते हैं, 'आज मैं हम सभी को चुनौती देना चाहता हूं कि हम वेब को लेकर कहीं अधिक महती आकांक्षाएं पालें। मैं चाहता हूं कि वेब हमारी आकांक्षाओं को परिलक्षित करे और हमारे सपनों को पूरा करें, बजाय कि हमारे भय को बढ़ाने और हमारे बीच के भेद को गहरा करने के। अब जरूरत इस बात की है कि हम कारोबारी, प्रौद्योगिकी, सरकार, नागरिक समाज, कला और अकादमिक जगत के श्रेष्ठ मस्तिष्क को अपने साथ जोड़ें और वेब के भविष्य से उपजी चुनौतियों का सामना करें। वेब फाउंडेशन में हम सभी इस मिशन में अपनी-अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार हैं ताकि ऐसा वेब बना सकें जैसा हम चाहते हैं। इसे संभव बनाने के लिए हमें मिलकर काम करना चाहिए।'

THE HINDU

Date: 20-03-18

First step in a long journey

Ruha Shadab (Ruha Shadab, a physician and health strategist, is with NITI Aayog)

The National Medical Commission Bill seeks to make structural changes in an exploitative health-care system

Even as the spotlight shifts to a "maha-panchayat" of doctors under the Indian Medical Association getting ready later this month to challenge the National Medical Commission (NMC) Bill, 2017 (now

before a parliamentary standing committee), it is pertinent to look at the Bill's highlights. Article 47 of the Constitution makes it clear that the state is duty-bound to improve public health, but India continues to face a health crisis, with an absolute shortage of and an inequitable presence of doctors and over-burdened hospitals.

Although India has 10 lakh medical doctors, it needs 3,00,000 more in order to meet the World Health Organisation standard of the ideal doctor-population ratio. There is an 81% shortage of specialists in community health centres (CHC), the first point of contact for a patient with a specialist doctor. Those most affected by this are poor and rural patients who are then forced to consult quacks. Another fact is that 82.2% of providers of "modern medicine" in rural areas do not have a medical qualification. Rural India, which accounts for 69% of the population, faces another issue — only 21% of the country's doctors serve them.The quality of the health-care experience too needs attention. It is ironic that, while India is a hub for medical tourism (in 2016, India issued 1.78 lakh medical visas), it is a common sight in government hospitals to have patients sleep in corridors waiting for their outpatient department appointments.

The Bill, among other things, seeks to address these problems.

A commercialization

The insertion of Section 10A in the Indian Medical Council Act was followed by an exponential rise in the number of private medical colleges. This was encouraged as there was, and still is, a shortfall in the number of medical practitioners. However, the high capitation fees charged by these colleges can have a negative effect in terms of affordability of medical services.The regulatory authority has been unable to act despite the fact that over half the 60,000 medical students graduating every year are from private medical colleges.

With corruption in the issuing of licences and regulatory requirements, many such academic institutions have a faculty of questionable standards, with obvious repercussions on the quality of education imparted.The Bill puts in place a mechanism to assess and rate medical colleges regularly, with a high monetary penalty for failure to comply with standards. Three such failures will result in the de-recognition of a college. There is also an enabling provision for the government to regulate the fees of up to 40% seats in private medical colleges. NITI Aayog data show that this amount falls in a Goldilocks zone, wherein the regulation can be made revenue neutral for the college by nominally raising fees for non-regulated students.

The Bill goes a step further with a relaxation of the criteria for approving a college in specific cases. Currently, there is a blanket standard for establishing a medical college in India, which disregards the contextual realities in some areas such as difficult terrain or a low population density. For instance, Arunachal Pradesh, Mizoram, and Nagaland do not have a single medical college.

Inverted pyramid

India has a well-thought-out, three-tier public health-care system which rests on a base of sub-centres (SC) and primary health centres (PHCs) which take care of common ailments. Patients in need of specialist consultations go up the chain to secondary centres (CHCs) , or tertiary centres, which are district hospitals (DHs) or medical colleges. However, because of a poor vanguard, patients who can be treated at the "base" (SCs or PHCs), go straight to the "apex" (CHCs or DHs).

Strengthening primary centres can ensure that the pyramid rests on its base again. With the government now planning to revamp 1,50,000 sub-centres into health and wellness centres by 2022, there is need for an equivalent number of mid-level providers. For this, India's 7,70,000 AYUSH (Ayurveda, Yoga and Naturopathy, Unani, Siddha and Homoeopathy) practitioners can be tapped.

The Bill has facilitated this by providing for a bridge course for AYUSH/non-allopathic doctors. This course, to be designed by a joint sitting of all medicine systems, will ensure that non-allopathic doctors are trained to prescribe modern medicines in a limited way, within the scope of primary care. A parallel is the system of "barefoot doctors" in China.Thirteen States now permit AYUSH doctors to prescribe varying levels of allopathic care. The NMC Bill will bring in a homogenisation of such rules without diluting the varied systems of medicines.An added measure in the Bill prevents "cross-pathy" or the unqualified cross-over of health-care providers from one system to another. The Bill provides for two separate national registers – allopathic doctors, and AYUSH doctors who complete the bridge course, respectively.In the end, the Bill seeks to make structural changes in a stagnant and increasingly exploitative health-care system. While it is no magic bullet, it should be looked at as a step in the right direction.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 20-03-18

Liberals, sadly

Ramachandra Guha The writer is a Bengaluru-based historian

In promoting individual freedoms, India's liberals must take on both Hindu and Muslim communalists

Harsh Mander is a friend of some 40 years' standing, and on many issues we have stood on the same side. It is, therefore, with some sadness that I must dissent with his recent piece in The Indian Express on Muslim politics. Mander ('Sonia, sadly', IE, March 17) quotes a Dalit leader as telling Muslims who come to political meetings: "By all means, come in large numbers to our rallies. But don't come with your skullcaps and burkas." He is dismayed by this advice, seeing it as a gratuitous attempt to get "Muslims to voluntarily withdraw from politics". To the contrary, while the words may be harsh and direct, the spirit of the advice was forward-looking. Many people, this writer among them, object to Hindus flaunting saffron robes and trishuls at rallies. While a burka may not be a weapon, in a symbolic sense it is akin to a trishul. It represents the most reactionary, antediluvian aspects of the faith. To object to its display in public is a mark not of intolerance, but of liberalism and emancipation.

As an example of what Muslims can contribute to our political life, Mander reminds us that "Londoners have elected a very popular and personable Muslim mayor of Pakistani origin." Well, for one thing, Sadiq Khan does not wear a skull cap, and his wife does not wear a burka either. In doing so, the Khans have not succumbed to majoritarian Christianity to be accepted as British; rather, they have identified themselves as being in favour of gender equality as well as cultural diversity. This embrace of modern democratic values shows not merely in what the Khans wear, but in what they believe in.

Mander says that Muslims "need no one's permission to choose their leaders, campaign for those they support, and indeed to lead." Sure, but by the same token, would he also disallow Muslims from criticising Hindus who are led (or mis-led) by the likes of Pravin Togadia and Yogi Adityanath? Every Indian democrat has the right to criticise public figures whose speeches and actions are manifestly against the values of the Constitution. I would never deny a Muslim or Christian compatriot the freedom to criticise a bigoted or backward politician merely because he happens to be a Hindu. Just because I happen to be a Hindu too, why must anyone deny me the right, as a secular democrat myself, to criticise Asaduddin Owaisi or Syed Ali Shah Geelani?

Since Independence, there have been perhaps three Muslim leaders in India who had the potential to take their community out of a medievalist ghetto into a full engagement with the modern world. The first was Sheikh Abdullah, who was tragically undone by his enchantment with an independent Kashmir. The second was Hamid Dalwai, who died in his early forties, much before his time. The third was Arif Mohammad Khan, who was betrayed by his own prime minister. Abdullah, Dalwai and Khan were all secularising modernists. Despite being males themselves, they believed that patriarchy was a curse which kept their community backward. Of the three, Dalwai is now the least known, but the most relevant to the liberal predicament today. I reproduce below some statements from his writings of the 1960s and 1970s, which speak directly to both Muslims and Hindus in the present.

"The only leadership Indian Muslims have is basically communalist… Indian Muslims today need an avant garde liberal elite to lead them. This elite must identify itself with other modern liberals in India and must collaborate with it against Muslim as well as Hindu communalism. Unless a Muslim liberal intellectual class emerges, Indian Muslims will continue to cling to obscurantist medievalism, communalism, and will eventually perish both socially and culturally. A worse possibility is that of Hindu revivalism destroying even Hindu liberalism, for the latter can succeed only with the support of Muslim liberals who would modernise Muslims and try to impress upon them secular democratic ideals."

"Within the Hindu majority, there is a strong obscurantist revivalist movement against which we find a very small class of liberals engaged in fight. Among Indian Muslims there is no such liberal minority leading the movement towards democratic liberalism. Unless Indian liberals, however small they are as a minority, are drawn from all communities and join forces on a secular basis, even the Hindu liberal minority will eventually lose its battle with communalist and revivalist Hindus. If Muslims are to be integrated in the fabric of a secular and integrated Indian society, a necessary precondition is to have a class of Muslim liberals who would continuously assail communalist dogmas and tendencies. Such Muslim liberals, along with Hindu liberals and others, would comprise a class of modern Indian liberals."

"The real conflict in India today is between all types of obscurantism, dogmatism, revivalism, and traditionalism on one side and modern liberalism on the other. Indian politicians being short-sighted and opportunistic, communalism and orthodoxy is always appeased and seldom, if ever, opposed. This is why we need an agreement among all liberal intellectuals to create a non-political movement against all forms of communalism."I detest Hindutva majoritarianism as much as Mander does. The persecution and stigmatisation of Muslims by groups and leaders allied to the ruling BJP regime is deeply worrying. Because Hindus are in an overwhelming majority in India, their communalism is far more dangerous than Muslim communalism. At the same time, one should recognise that discrimination by caste and especially gender is pervasive among Muslims too. And regardless of their own personal faith, or lack thereof, liberals must consistently and continually uphold the values of freedom and equality. They must promote the interests of the individual against that of the community, and seek to base public policies on reason and rationality rather than on scripture. In this struggle, liberals must have the courage to take on both

Hindu and Muslim communalists. To quote Dalwai one last time, the "real conflict in India today is between all types of obscurantism, dogmatism, revivalism, and traditionalism on one side and modern liberalism on the other".

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 20-03-18

क्यों लगातार छूमंतर हो रही हैं हमारी खुशियां

महेश भारद्वाज, वरिष्ठ अधिकारी, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

बहुत सारे गम इसलिए होते हैं कि खुशी गैर-हाजिर होती है। जीवन में खुशी कैसे हाजिरी दे, इसका **मनोविज्ञान**, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र काफी जटिल है। इधर दिल्ली सरकार ने स्कूलों में हैप्पीनेस को एक विषय के रूप में पढ़ाने की कवायद पिछले महीने से शुरू की है। सीबीएसई यानी केंद्रीय माध्यमिक **शिक्षा** बोर्ड भी बच्चों के कंधों पर से बोझ कम करने के **प्रति** गंभीर है। हिंसा की बढ़ती वारदातों और खबरों के बीच बच्चे कैसे खुश **रहें**, यह एक गंभीर मसला बन चुका है। खुशी का यह संकट बच्चों तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जाति के लिए चुनौती बनकर उभर रहा है। पूरी दुनिया ही इस मुद्दे को लेकर चिंतित **दिखाई** दे रही है।

कोई देश कितना खुश है, कितना कम या **ज्यादा** खुश है, संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे मापने का बाकायदा एक पैमाना ही बना दिया है। इसी पैमाने पर संघ के 193 सदस्य देशों में खुशी के स्तर को मापने के लिए 2012 से लगातार प्रयास **किए** जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के 'वर्ल्ड हैप्पीनेस इंडेक्स' को तैयार करने में जिन मानदंडों का ध्यान रखा जाता है, उनमें प्रति **व्यक्ति** सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी, जनता को उपलब्ध सामाजिक और **संस्थागत** समर्थन, अनुमानित स्वास्थ्यपूर्ण आयु, सामाजिक आजादी, समाज में व्याप्त आपसी भरोसा व उदारता और उस देश में **भ्रष्टाचार** के बारे में लोगों की राय जैसे कई मसले शामिल **हैं**। इसी के साथ हर साल पूरी दुनिया ने 20 मार्च को 'वर्ल्ड हैप्पीनेस डे' भी मनाना शुरू कर दिया है।

आखिर ऐसा क्या हो गया कि खुशियों को लेकर चिंता विश्व व्यापी होने लगी है? अमेरिका के लिए तो सवाल और भी गहरा है, जो अमीर भी होता जा रहा है और खुशियों से दूर भी। भारत अगर इस क्षेत्र में पीछे है, तो उसके अपने कारण हैं। कहा जा सकता है कि कुछ कमी तो हैप्पीनेस को मापने के फॉर्मूले में भी है। इसमें रखे गए मानदंड पाश्चात्य विकसित देशों की **परिस्थितियों** को ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं। ऊपरी पायदान वाले **देशों** में संसाधनों पर जनसंख्या का किसी प्रकार का दबाव नहीं है, जिसे भारत जैसे विकासशील देशों में प्रमुखता से देखा जा सकता है। जहां फिनलैंड कुदरती सुरक्षा, बच्चों की देखभाल, अच्छे स्कूल और मुफ्त चिकित्सा सुविधाओं की वजह से अव्वल नंबर पर है, वहीं अमेरिका आमदनी बढ़ने के बावजूद मोटापे, **ड्रग्स** की लत, तनाव के कारण सूचकांक में लगातार नीचे जा रहा है। इस **लिहाज** से भारत में स्वीडन वाली सुविधाएं तो महज चंद लोगों और बड़े शहरों तक सीमित हैं और अमेरिका वाली स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं। बल्कि अभी तो आबादी के बड़े हिस्से को पेट भर भोजन और पीने का साफ पानी तक मयस्सर नहीं हो पा रहा है। जीडीपी में जरूर इजाफा हो रहा है, पर वह **पर्याप्त** नहीं है। ऊपर से राजधानी दिल्ली सहित देश के बड़े शहरों मे साफ हवा तक को लेकर हो रही चिंता ने हैप्पीनेस के विचार के होश उड़ा दिए हैं। हां, आबादी की अनुमानित औसत आयु अवश्य बढ़ी है, **लेकिन** उसके स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-सुविधाओं को लेकर हालत में कोई खास बदलाव नहीं आया है। भ्रष्टाचार की चिंता तो स्थाई सी लगती है।

भारत में खुशियों में कमी की असल जड़ है **संसाधनों** की कमी, जिसके चलते कहीं पहले वाली पीढ़ियों ने, तो कहीं मौजूदा पीढ़ी ने अपने जीवन में अभाव देखे हैं और इससे लोगों में संचय करने की भावना तीव्रतर होती गई, जो बाद में सामाजिक मूल्यों के रूप में स्थापित हो गई। यहां लोग तीन पीढ़ियों तक की चिंता **में** लगे रहते हैं, भले ही खुद का जीवन कितना ही **नारकीय** क्यों न बना रहे। सामाजिक उत्तरदायित्व के मद्देनजर आने वाली पीढ़ी के **लिए** संवेदनशील होना कोई खराब बात नहीं है। यह राष्ट्र-निर्माण के लिए जरूरी भी है। फिर भी वर्तमान और भविष्य की जरूरतों के बीच कोई रेखा तो खींचनी ही होगी। यह भी कहा जाता है **कि** खुशियों की चिंता से पहले जनता को भरपेट खाना देने की चिंता जरूरी है। नीतियां, आर्थिक स्थिति, संसाधन और सेहत वगैरह अपने आप में कोई खुशी नहीं है, लेकिन मिलकर उसकी जरूरी शर्त तो हैं ही।

जनसत्ता

Date: 20-03-18

जोखिम में बच्चे

संपादकीय

उम्मीद की जाती है कि कोई भी समाज **सभ्य** होने के साथ-साथ अपने बीच के उन तबकों के जीवन की स्थितियां सहज और सुरक्षित बनाने के लिए तमाम इंतजाम करेगा, जो कई **वजहों** से जोखिम या असुरक्षा के बीच जीते हैं। लेकिन इक्कीसवीं सदी का सफर करते हमारे बच्चे अगर कई तरह के खतरों से जूझ रहे हैं तो **निश्चित** रूप से यह चिंताजनक है और हमारी विकास-नीतियों पर सवाल उठाता है। यों बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराध लंबे समय से सामाजिक चिंता का विषय रहे हैं। लेकिन तमाम अध्ययनों में इन अपराधों का ग्राफ बढ़ने के बावजूद इस दिशा में शायद कुछ ऐसा नहीं किया जा सका है, जिससे हालात में सुधार हो। हालांकि सामाजिक संगठनों से लेकर सरकार की ओर से इस मुद्दे पर अनेक बार चिंता जताई गई, समस्या के समाधान के लिए ठोस कदम उठाने के दावे किए गए। मगर इस दौरान आपराधिक घटनाओं के शिकार होने वाले **मासूमों** की संख्या में कमी आने के बजाय और बढ़ोतरी ही होती गई। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक 2015 के मुकाबले 2016 में बच्चों के प्रति अपराध के मामलों में ग्यारह फीसद की **बढ़ोतरी** दर्ज की गई। इनमें भी कुल अपराधों के आधे से **ज्यादा** सिर्फ पांच बड़े राज्यों- उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, दिल्ली और **पश्चिम** बंगाल में हुए। सबसे ज्यादा मामले अपहरण और उसके बाद बलात्कार के पाए गए।जाहिर है, कमजोर स्थिति में होने की वजह से बच्चे पहले ही आपराधिक मानसिकता के लोगों के **निशाने** पर ज्यादा होते हैं। फिर व्यवस्थागत कमियों का फायदा भी अपराधी उठाते हैं। विडंबना यह है कि चार से पंद्रह साल उम्र के जो मासूम बच्चे अभी तक समाज और दुनिया को ठीक से नहीं समझ पाते, वे आमतौर पर मानव तस्करों के जाल में फंस जाते हैं। इनमें भी लड़कियां ज्यादा जोखिम में होती हैं। एक आंकड़े के मुताबिक गायब होने वाले बच्चों में सत्तर फीसद से ज्यादा लड़कियां होती हैं। अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि बच्चों को मानव तस्करी का शिकार बनाने वाले गिरोह छोटी बच्चियों को देह व्यापार की आग में धकेल देते हैं। घरेलू नौकरों से लेकर बाल मजदूरी के ठिकानों पर बेच दिए जाने के अलावा यह लड़कियों के लिए दोहरी त्रासदी का जाल होता है। इन अपराधों की

दुनिया और उसके संचालकों की गतिविधियां कोई दबी-ढकी नहीं रही हैं। लेकिन सवाल है कि हमारे देश में नागरिकों की सुरक्षा में लगा व्यापक तंत्र अबोध बच्चों को अपराधियों के जाल से क्यों नहीं बचा पाता! आपराधिक मानसिकता वालों के चंगुल में फंसने से इतर मासूम बच्चों के लिए आसपास के इलाकों के साथ उनका अपना घर भी पूरी तरह सुरक्षित नहीं होता।

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट में पेश आंकड़ों के मुताबिक 2016 में ही देश भर में करीब एक लाख बच्चे यौन अपराधों के शिकार हुए। बच्चों के खिलाफ अपराधों में यौन शोषण एक ऐसा जटिल पहलू है, जिसमें ज्यादातर अपराधी पीड़ित बच्चे के संबंधी या परिचित ही होते हैं। लोकलाज की वजह से ऐसे बहुत सारे मामले सामने नहीं आ पाते। फिर आमतौर पर ऐसे आरोपी बच्चों के कोमल मन-मस्तिष्क का फायदा उठाते हैं और उन्हें डरा-धमका कर चुप रहने पर मजबूर कर देते हैं। जाहिर है, बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराधों के कई पहलू हैं, जिनसे निपटने के लिए कानूनी सख्ती के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता के लिए भी अभियान चलाने की जरूरत है। अक्सर हम देश के विकास को आंकड़ों की चकाचौंध से आंकते हैं। लेकिन अगर चमकती तस्वीर के पर्दे के पीछे अंधेरे में अपराध के शिकार बच्चे कराह रहे हों, तो उस विकास की बुनियाद मजबूत नहीं हो सकती!

Date: 20-03-18

पुतिन की जीत

संपादकीय

रूस की जनता ने व्लादिमिर पुतिन को चौथी बार देश की सत्ता संभालने के लिए भारी जनादेश देकर यह संदेश दिया है कि उनके नेतृत्व को लेकर उसके दिलो-दिमाग में कहीं कोई संशय नहीं है। पुतिन ने राष्ट्रपति चुनाव ऐसे वक्त में जीता है, जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका सहित पश्चिमी मुल्कों के साथ उनकी एक तरह से स्पष्ट और जबर्दस्त टकराव की स्थिति चल रही है। लेकिन उनके रुख से साफ है कि वे किसी भी ताकत के सामने झुके नहीं हैं, न कोई ऐसा समझौता किया है जो दुनिया में रूस के कमजोर पड़ने का संकेत देता हो। इसी से पुतिन की छवि एक कठोर और दृढ़ निश्चय वाले वैश्विक नेता की बनी है। पुतिन ने रूसी जनता के मन में भरोसे का एक स्थिर भाव पैदा किया है। गौरतलब है कि राष्ट्रपति चुनाव में पुतिन को इस बार छिहत्तर फीसद से भी ज्यादा वोट मिले, जबकि 2012 के चुनाव में उन्हें तिरसठ फीसद वोट मिले थे। सन 2000 में जब पुतिन पहली बार देश के राष्ट्रपति बने थे तब उन्हें तिरपन फीसद वोट मिले थे। जाहिर है, रूस में पुतिन की लोकप्रियता में लगातार इजाफा ही हुआ है। सोवियत संघ के विखंडन के बाद लंबे समय तक रूस में जो उथल-पुथल की स्थिति रही, उससे रूस को बाहर निकालने में पुतिन का बड़ा योगदान माना जाता है। इस बीच पुतिन ने न सिर्फ घरेलू मोर्चों, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपनी धाक कायम की है। इसीलिए वे रूसी जनता के लिए एक बार फिर नायक बने हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि राष्ट्रपति के तौर पर चौथा कार्यकाल पुतिन के लिए बड़ी चुनौतियों से भरा है। इस वक्त सीरिया अमेरिका और रूस के बीच प्रतिस्पर्धा का केंद्र बन गया है। सीरिया को लेकर कोई भी पक्ष झुकने को तैयार नहीं है। पूरी दुनिया मान चुकी है कि सोवियत संघ खत्म होने के बाद रूस महाशक्ति नहीं रह गया। अमेरिका को लग रहा है कि अगर सीरिया मामले में वह रूस के सामने कमजोर पड़ा तो सारी दुनिया की नजर में रूस फिर से महाशक्ति का दर्जा हासिल कर सकता है। फिलहाल सीरिया में जो हालत है और टकराव के जिस तरह मोर्चे खुले हुए हैं, उसके लिहाज से देखें तो पुतिन के चौथे कार्यकाल का शुरुआती दौर काफी महत्त्वपूर्ण होगा। हाल में ब्रिटेन में पूर्व रूसी जासूस की हत्या के मामले में भी रूस और ब्रिटेन के बीच जिस तरह का टकराव पैदा हो गया है, वह शीतयुद्ध के एक और दौर की आशंका को जन्म देता है। ब्रिटेन और रूस दोनों ने एक-दूसरे के राजनयिकों को बाहर निकाल दिया है। इस मुद्दे पर

यूरोपीय संघ के कई देश और अमेरिका ब्रिटेन के साथ हैं। ऐसे में रूस को इस द्वंद्व से निकालना पुतिन के लिए एक बड़ी कूटनीतिक चुनौती है।पुतिन ऐसे वक्त में चौथी बार राष्ट्रपति चुने गए हैं जब पड़ोसी देश चीन में राष्ट्रपति शी चिनफिंग के जीवन भर के लिए अपने पद पर बने रहने का रास्ता साफ कर दिया गया है। यों रूस और चीन के बीच बढ़ती नजदीकी से सबसे ज्यादा चिंतित अमेरिका ही है। इसके अलावा, पाकिस्तान से भी रिश्ते बना कर पुतिन ने संकेत दिया है कि जरूरत पड़ने पर एशियाई क्षेत्र में चीन-पाकिस्तान और रूस का गठजोड़ बन सकता है। फिलहाल भारत और रूस के रिश्ते तो मजबूत हैं। लेकिन भारत और पाकिस्तान के रिश्ते कैसे हैं, इससे रूस अनजान नहीं है। भारत के विरोध के बावजूद पिछले साल रूस ने पाकिस्तान के साथ सैन्य अभ्यास किया। ऐसे में पुतिन एशिया में क्षेत्रीय संतुलन बनाए रखते हुए रूस को फिर से महाशक्ति के रूप में कैसे स्थापित कर पाते हैं, यह देखने वाली बात होगी!